P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

धर्मनिरपेक्षता : सिद्धान्त और व्यवहार

हिन्दु राम
असिस्टेंट प्रोफेसर,
राजनीति विज्ञान विभाग,
गायत्री महाविद्यालय, सांचौर,
जालोर, राजस्थान, भारत

सारांश

धर्मनिरपेक्षता आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों का प्रमुख लक्षण है। आधुनिक काल में धर्मनिरपेक्षता का व्यापक समर्थन बुद्धिजीवियों तथा सुधारको ने किया। धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रकिया में समाज और संस्कृति के क्षेत्रों को धार्मिक संस्थाओं और प्रतीकों से मुक्त कराया जाता है। भारतीय समाज पारम्परिक समाज रहा है। आज भी भारतीय राजनीति में धर्म संस्कृति की प्रभावी भूमिका है। धर्म और राजनीति का गठजोड़ भारतीय राजनीतिक संस्कृति की पहचान रही है। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान कई संगठनों में राष्ट्रवादी राजनीति और राष्ट्र निर्माण की परियोंजना पर साम्प्रदायिक और धार्मिक कट्टरपंथी विचारधाराओं का शिकंजा कसना शुरू हो गया था। इन राष्ट्रीय संगठनों में धार्मिक प्रतीकों और पद्धतियों का इस्तेमाल किया। फलस्वरूप धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया को क्षति पहुँची। वही गांधी ने राष्ट्रीय चेतना पैदा करने के लिए लोकधर्म को आवश्यक बताया। गांधी जनता की धार्मिक भावना के सहारे राष्ट्रीय आन्दोलन के राजनीतिक आधार को व्यापक बनाने का कार्य किया। राजा राममोहन राय, विवेकानन्द ने भारतीय धर्मनिरपेक्षता को सम्मानजनक स्थान दिलाया। धर्मनिरपेक्षता आज हमारे संविधान का मूल ढाँचा है जो कि इसका सामाजिक चेतना और मानवता सारतत्व है। इसमें समाज के सर्वोच्च मूल्य तथा मानव अधिकारों पर जोर दिया। प्रस्तावना, मूल अधिकार, नीतिनिर्देशक में तथा कानून व्यवस्था को सर्वोपरि तत्वों के रूप में धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद और सामाजिक न्याय का रेखाकिंत किया। धर्मनिरपेक्ष भारत में सभी धर्म तथा अनुयायी सभी एक समान है। यही कारण है कि यहाँ अनेकता में एकता है जो भारतीय संस्कृति की पहचान रही है।

मुख्य शब्द : धर्म–संस्कृति, धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवी वर्ग, राष्ट्रवादी राजनीति, धार्मिक कट्टरपंथी, अलगाववाद, धार्मिक बहुलवाद, धार्मिक संवेदनशीलता, धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद।

प्रस्तावना

धर्मनिरपेक्षता जीवन का एक आधुनिक दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पाश्चात्य जगत के औद्योगिक बाजार–समाजों में उत्पादन, वितरण और खपत के व्यापक सामाजिक संगठनों की पैदाइश था।

प्रारम्भ में धर्मनिरपेक्षता के विचार की वकालत कुछ बुद्धिजीवियों द्वारा की गई थी। यूरोप में सामन्तवादी विरोधी विद्रोहों के प्रबल होने के दौरान नए उभरते बुर्जुआ वर्ग ने इस विचार का समर्थन किया और इसे आगे बढ़ाया। यह बुर्जुआ–वर्ग मानता था कि आधुनिक उद्योग और कृषि–अर्थव्यवस्था की भांति ही, आधुनिक राष्ट्र राज्य की सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएं सामाजिक संगठनों के पिछड़े सिद्धान्तों से नियंत्रित नहीं की जा सकती। पूर्व पूंजीवादी समाज का सांस्कृतिक गढ़ धर्म था, इसलिए धर्म ही बुर्जुआ बुद्धिवादी आलोचना का लक्ष्य बना। इस तरह वैध विचारधारा के रूप में धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता को नया महत्व मिला। जैसे ही बुर्जुआ वर्ग के हाथ में थोड़ी राजसत्ता आई वैसे ही धर्मनिरपेक्षता को आधुनिक राज्य के संवैधानिक दर्शन का दर्जा मिला और राज्य की नीति के रूप में संस्थात्मक वैधता प्राप्त हुई।[1]

धर्मनिरपेक्षता का उदय

'धर्मनिरपेक्ष' अंग्रेजी शब्द 'सेक्यूलर' (Secular) का रूपान्तरण है। इस अंग्रेजी शब्द का प्रयोग यूरोप में तीस वर्ष तक चले युद्ध की समाप्ति पर सन् 1648 में पहली बार हुआ। इसके बाद इस विचारधारा को लोकप्रियता मिली। फ्रांस की क्रांति के बाद 2 नवम्बर, 1798 को टैलीरेन्ड (फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ) ने फ्रांस की राष्ट्रीय सभा में घोषणा की कि 'गिरजाघरों से संबंधित सारी वस्तुएं राष्ट्र के अधिकार में है।''[2]

1851 में जार्ज जेकब होलियोग ने 'सेक्यूलरिजम' (धर्मनिरपेक्षतावाद) शब्द गढ़ा। धर्मनिरपेक्षतावाद ने राजनीतिक दर्शन का स्वरूप 1850 में ही ग्रहण

किया। इसे राजनीतिक और सामाजिक संगठन का एकमात्र तार्किक आधार घोषित किया गया। यूरोप के अधिकांश परिवर्तनवादी बुद्धिजीवियों और सुधारकों ने इसे प्रगति का आंदोलन करार दिया।

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ

धर्मनिरपेक्ष 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' या 'धर्मनिरपेक्षता' जैसे शब्द ऐसे समाज या राज्य की पहचान कराते हैं जिसमें राजनीति, प्रशासन और सार्वजनिक सामाजिक जीवन का धर्म से पूरी तरह अलगाव होता है। अतः एक राज्य उसकी नीति और उसकी समग्र राजनीतिक संस्कृति का धर्मनिरपेक्ष चरित्र इससे तय होता है कि वे धार्मिक संस्कृति के मकड़जाल की जकड़ से किस सीमा तक मुक्त है। अगर किसी देश की सत्ता, राज्य और समाज को जकड़ में लेने वाले सामाजिक, आर्थिक संकट को सुलझाने के लिए गैर धार्मिक समाधान खोजे जाते हैं तो इसकी राजनीतिक संस्कृति को धर्मनिरपेक्ष कहा जाता है।[3]

धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया कई तत्वों से निर्धारित होती है। आधुनिक राष्ट्र राज्य के उभरने की प्रकृति, उसकी ऐतिहासिक परिस्थितियों की विशिष्टताएं, राज्य के वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी विकास का स्तर आदि सामन्ती प्रतिक्रिया को पराजित करने में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त धर्मनिरपेक्ष शिक्षा, धर्मनिरपेक्ष साहित्य और धर्मनिरपेक्ष इतिहास लेखन की भूमिका भी गैर धार्मिक अर्थों में राष्ट्र और राष्ट्रीय विकास को परिभाषित करती है। इस तरह 'धर्मनिरपेक्षीकरण' की एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा समाज और संस्कृति के क्षेत्रों को धार्मिक संस्थाओं और प्रतीकों से मुक्त कराया जाता है।

भारत में धर्मनिरपेक्षता का विकास

भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू होने से पूर्व और शुरू होने के बाद भी परम्परावाद की अपनी महत्वपूर्ण जगह बनी रही। भारतीय सामाजिक जीवन में सक्रिय धर्म और पुनरूत्थानवाद की पारम्परिक ताकतों के प्रबल प्रवाह ने धर्मनिरपेक्षीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बहुत क्षति पहुंचाई। भारत आज भी पारम्परिक समाज बना हुआ है। अधिकांश मामलों में लोगों के जीवन में धर्म का अभी भी पूरा दखल बना हुआ है। फ्रांसीसी विद्वान 'लूई डयूमोंट' के अनुसार 'भारत में धर्म समाज का अंग है।'[4]

भारत में जाति की राजनीति और सामाजिक इसका ज्वलंत उदाहरण है। अभी तक धर्म संस्कृति और भारत की प्रभावी राजनीति के बीच कोई प्रमुख दरार या महत्वपूर्ण अलगाव देखने को नहीं मिला है। परिणामतः विरोध में उठती तमाम आवाजों के बावजूद धर्म और राजनीति का गठजोड़ भारतीय राजनीतिक, संस्कृति का प्रमुख लक्षण बना हुआ है।

परम्परागत स्वरूप वाले भारतीय समाज के आधुनिक राष्ट्रीय राज्य–व्यवस्था में बदलने की प्रक्रिया मात्र एक शताब्दी पुरानी है। ऐतिहासिक अतीत में भारतीय लोगों में राष्ट्रवाद की वैसी भावना का विकास नहीं हुआ था जैसा 19वीं सदी के अन्त तक यूरोप में हुआ था। जाति–प्रथा पर टिप्पणी करते हुये राजा राममोहन राय ने कहा था– ''मुझे यह कहते हुए अफसोस होता है कि धर्म का वर्तमान स्वरूप जिससे हिन्दू चिपके हुए हैं, उनके राजनीतिक हितों के लिए अनुकूल नहीं है। जाति के विशेष वर्णों और उनके भी असंख्य विभाजन तथा उप–विभाजनों ने उन्हें देश प्रेम की भावना से वंचित कर दिया है।''[5]

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब भारतीयों के मन में राष्ट्रवादी भावनाओं का बीजारोपण हुआ तो उन्हें प्रारंभिक बिन्दु से ही चलना पड़ा। प्रारंभिक उदारवादी, हालांकि अपने निजी जीवन में नास्तिक थे परन्तु राजनीति या सार्वजनिक जीवन में धर्मनिरपेक्ष रूख बनाये रखते थे। ऐसा करने में उनका उद्देश्य होता था कि सभी भारतीयों का एक समुदाय बनाये और साथ ही अंग्रेजों से रियायतें प्राप्त करें। धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवी वर्ग को पारम्परिक राजनीति से टकराना पड़ता था और यह टकराहट व्यावहारिक राजनीति में बहुत चुनौतीपूर्ण होती है।

ध्यातव्य है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के कुछ ही वर्षों में पारम्परिक समाज ने राष्ट्रीय संघठन (लामबन्दी) के मानदंड स्थापित करने शुरू कर दिये थे। अर्थात् शुरूआत से ही राष्ट्रवादी राजनीति और राष्ट्र निर्माण की परियोजना पर साम्प्रदायिक और धार्मिक कट्टरपंथी विचारधाराओं का शिकंजा कसना शुरू हो गया था। उदारवादियों और उनकी धर्मनिरपेक्ष विचारधारा के सामने बालगंगाधर तिलक, अरविन्द घोष, लाला लाजपतराय जैसे हिन्दू पुनरूत्थानवादी नेताओं और मुस्लिम पुनरूत्थानवादियों द्वारा शीघ्र ही चुनौतियां खड़ी कर दी गई। राष्ट्रीय संगठन धर्म और संस्कृति के सवालों पर होना शुरू हो गया। अन्ततः इससे हिन्दू–मुस्लमानों के बीच अलगाववाद को बढ़ावा मिला। इन राष्ट्रीय संगठनों ने धार्मिक प्रतीकों और पद्धतियों का इस्तेमाल किया गया। फलस्वरूप धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया को क्षति पहुंची। नरमपंथियों के आंग्ल प्रभावित धर्मनिरपेक्ष नेतृत्व ने अपने धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक संकल्प के अनुरूप विभिन्न धार्मिक प्रसंगों और प्रतीकों को कांग्रेस की कार्रवाइयों से बाहर रखने का भरसक प्रयास किया।

धर्मनिरपेक्षता और गांधीवादी आदर्श

देश में राष्ट्रीय संगठन के लिए धर्म और राजनीति के मध्य संतुलन स्थापित करने का कार्य गांधी पर छोड़ दिया गया। गांधीजी ने राजनीतिक आंदोलन के लिए धर्म की जरूरत बताई और कहा–''जो लोग यह कहते हैं कि धर्म को राजनीति से कुछ लेना–देना नहीं है, वे नहीं जानते कि धर्म का क्या मतलब है।''[6] ''मेरे लिए प्रत्येक छोटी से छोटी गतिविधि भी उसी से नियंत्रित होती है। जिसे मैं अपना धर्म मानता हूँ।''[7] गांधीजी ने राष्ट्रीय चेतना पैदा करने के लिए लोक धर्म की भूमिका को आवश्यक बताया। वे जनता की धार्मिक भावना के सहारे राष्ट्रीय आंदोलन के राजनीतिक आधार को व्यापक बनाना चाहते थे।

राष्ट्रीय आन्दोलन का गांधीवादी आदर्श हिन्दू लोकाचारों से गहराई से जुड़ा हुआ था, फिर भी यह धार्मिक बहुलवाद पर आधारित था, जिसमें भारत और विश्व के सभी धर्मों के प्रति समान आदर की भावना निहित थी। उनकी धार्मिक संवेदनशीलता एक सच्ची लोकतांत्रिक प्रवृत्ति से जुड़ी थी। खिलाफत आंदोलन को

उनका समर्थन और बाद में इस आंदोलन का भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में रूपान्तरण होना, गांधीजी की इसी संवेदनशीलता का उदाहरण है। यही कारण है कि धर्मनिरपेक्षता के गांधीवादी आदर्श को ''संयुक्त धर्मनिरपेक्षता या सभी धर्मों के प्रति आदर या सर्वधर्म सद्भाव के रूप में भी रखा गया है।''

धर्मनिरपेक्षता का यह गांधीवादी स्वरूप गरीबों और अमीरों के बीच लोकप्रिय हो गया। गांधीजी की धार्मिक पृष्ठभूमि वैष्णव परम्परा की थी। इस परम्परा ने उन्हे भारत के लोकनायकों से जुड़े प्रतीकों और पुराण कथाओं की प्रत्यक्ष जानकारी दी जिनका इस्तेमाल गांधीजी ने अपनी राजनीति में किया। जैसे स्वतंत्र भारत के आदर्श राज्य को उन्होंने 'रामराज्य' का नाम दिया। गांधीजी ने अहिंसा और न्यासी सिद्धान्त (ट्रस्टीशिप) का प्रतिपादन किया।

अंग्रेजों ने भारत में 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई। अपनी इस नीति के तहत अंग्रेजों ने भारत में साम्प्रदायिक विद्वेष की भावनाओं को भारतीय जनता को दबाने के लिए विकसित किया। उन्होंने कभी हिन्दुओं का पक्ष लिया और कभी मुसलमानों का। अंग्रेजों ने आरक्षण का प्रावधान कर, हिन्दुओं या मुसलमानों को एक–दूसरे के विरूद्ध स्थापित करने की कोशिश की। अपनी इस कोशिश में वे सफल भी रहे क्योंकि आखिरकर भारत का विभाजन हो गया। विभाजन हो जाने के बावजूद भारत में धर्म निरपेक्षता पूर्ववत बनी रही।[8]

अंग्रेजी शासनकाल में मुस्लिम नेताओं और विद्वानों ने धर्मनिरपेक्षता का प्रचार किया। इस काल में नजीर अहमद, मुहम्मद इकबाल, अल्ताज हुसैन हाली आदि ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने धर्मनिरपेक्षता के प्रचार में सक्रिय सहयोग दिया। मुहम्मद इकबाल ने तो 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा... जैसे गीत की रचना की, जो भारतीयों की धर्मनिरपेक्षता का प्रतीक है।

राजा राममोहन राय को आधुनिक भारत के धर्मसुधारकों का जनक कहा जाता है। विवेकानन्द ने धर्म निरपेक्षता का प्रचार न केवल भारत में किया अपितु विदेशों में भी उसे सम्मानजनक स्थान दिलाया। उन्होंने शिकागो में 1893 के विश्व धर्म संसद में जो व्याख्यान दिया था वह भारतीय धर्मनिरपेक्षता को पूर्णरूप से प्रकट करता है जिसमें विवेकानन्द ने कहा था कि सबको अपने धर्म का पालन करना चाहिए, दूसरे धर्म को मानने वालों को आदर प्रदान करना चाहिए तथा किसी को भी धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर नहीं करना चाहिए। उन्होंने 'गर्व से कहो हम हिन्दू हैं' का नारा दिया था। पर उनके इस कथन के पीछे यह आशय कदापि नहीं था कि हम दूसरों को ही हिन्दू बनाए। उन्होंने धर्म–परिवर्तन को कायरता की संज्ञा दी थी।[9]

स्वतंत्रता प्राप्ति और धर्म निरपेक्षता

भारत ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राष्ट्रीय आन्दोलन की धर्मनिरपेक्ष विरासत को अपना लिया। व्यवहार में जो धर्मनिरपेक्षता स्वीकार की गई वह गांधीवादी और आमूल परिवर्तनवादी आदर्शों के बीच एक समझौते के रूप में थी।

धर्मनिरपेक्षता हमारी संवैधानिक व्यवस्था की सामाजिक चेतना और मानवता का सार तत्व है। हमारे राष्ट्रीय नेताओं और जनता ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध धर्मनिरपेक्षता की तलवार से लड़ाई लड़ी। 1895 से लेकर संविधान निर्माण में किये गये अनेक प्रयोगों में धर्म, लिंग, भेदभाव से मुक्त समाज में मानव अधिकारों के मूल्य पर जोर दिया जाता रहा है। पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा संविधान सभा में रखे गये उद्देश्यों के प्रस्ताव में धर्मनिरपेक्ष समाज में अंतर्भूत समाज के सर्वोच्च मूल्य तथा मानव अधिकारों पर जोर दिया गया। अंत में संविधान की प्रस्तावना, मूलभूत अधिकारों तथा नीति निदेशक सिद्धान्तों के अध्यायों में भारत की कानून व्यवस्था के सर्वोपरि तत्वों के रूप में धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद और सामाजिक न्याय को रेखांकित किया गया।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्षता' शब्द को 1976 के 42वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया। मूल संविधान में अनुच्छेद 25 से अनुच्छेद 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार वर्णित है। अनुच्छेद 29–30 और अनुच्छेद 350 (ए) में अल्पसंख्यकों के अधिकारों का वर्णन है। 1978 में अल्पसंख्यक आयोग का गठन किया गया ताकि अल्पसंख्यकों को विकास के समान अवसर प्रदान किए जा सकें। भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक अधिकार प्राप्त है। भारत एक प्रजातांत्रिक देश है। प्रजातंत्र में प्रजा या जनता को सर्वोपरि स्वीकार किया जाता है। व्यक्ति की श्रेष्ठता तथा सम्मान को महत्व दिया जाता है।

धर्मनिरपेक्ष भारत में सभी धर्म तथा उनके मानने वाले एक समान है। हमारे संविधान निर्माताओं ने धार्मिक पाखण्ड को हटा दिया गया है। धर्मनिरपेक्ष भारत संसार का एक महान राष्ट्र है आज भारत में अनेकता में एकता है। भारत में 1652 मातृ–भाषाएं बोली जाती है। कुछ छिटपुट घटनाओं को छोड़कर हमेशा सौहार्द की भावना विद्यमान रही है। भारतीय संस्कृति की मूल पहचान रही है.....''वसुधैव कुटुम्बकम्'। भारत में मुसलमान, इसाई, पारसी, यहूदी आदि जो भी आए, सबका हार्दिक स्वागत किया गया। उनके विचारों और आदर्शों को आत्मसात किया गया तथा उनके साथ किसी भी तरह का भेदभाव नहीं किया गया।

संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता का उल्लेख होने के कारण भारत की नीतियों की प्राथमिक आवश्यकता बन गयी। क्योंकि अब यह देश के अस्तित्व के साथ जुड़ गयी।[10]

80 के दशक से धर्मनिरपेक्षता का मुद्दा जिस तरह भारतीय राजनीति पर छाया हुआ है। वह देश के धार्मिक और सांस्कृतिक अधःपतन को सूचित करता है। देश के हर राजनीतिक दल एक–दूसरे पर साम्प्रदायिक होने का आरोप लगा रहे हैं और अपने आप को पाक–साफ बताते हैं। इन नीतियों से राजनीतिज्ञों का उल्लु तो सीधा हो जाता है, पर जनता बुरी तरह संकीर्ण भावनाओं में जकड़ जाती है।

निष्कर्ष

धर्मनिरपेक्षता हमारी संस्कृति की मूल पहचान रही है। देश स्वतंत्रता के बाद धर्मनिरपेक्षता को प्रभावी

बनाने के लिए संवैधानिक उपबंध किये गये। देश की सरकारो ने धर्मनिरपेक्षता के आदर्श को लागू करने के लिए प्रभावी भूमिका निभाई। लेकिन आज भी भारतीय राजनीति में धर्म का मुद्दा हावी है। गत लोकसभा निर्वाचन 1996, 1998, 2004, 2009, 2014 में हुए आम चुनावों में धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता को जिस अर्थ में प्रस्तुत किया गया उसे लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं माना जा सकता। जनसाधारण को दिग्भ्रमित किया जा रहा है। पिछले दशक से 'धर्मनिरपेक्षता' शब्द को ज्यादा उछाला जा रहा है, उससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय राजनीतिज्ञों के पास कोई अन्य मुद्दों का अभाव हो गया है। देश में कुछ राजनीतिज्ञों द्वारा यह प्रचारित किया जा रहा है कि देश का एक राजनीतिक दल साम्प्रदायिक है और वह देश के एक विशेष सम्प्रदाय का निर्माण केवल 'धर्म' से जुड़े लोगों से नहीं होता। इस प्रकार किसी दल विशेष की टिप्पणी राजनेता अपने निजी हितों तथा राजनीतिक स्वार्थतावश आरोप–प्रत्यारोप लगाते रहे हैं। बहुसंख्यकों के साथ–साथ अल्पसंख्यकों के हितों को भी समान महत्व प्रदान किया जाना चाहिए। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि धर्मनिरपेक्षता को सही ढंग से प्रस्तुत किया जाए और उसकी विशिष्टता को कायम रखते हुए परम्परा की रक्षा की जाए।

अंत टिप्पणी

1. *गोडबोले, माधव, धर्मनिरपेक्षता दोराहे पर भारत, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 39*
2. *जुल्फिकार, धर्मनिरपेक्षता और हिंदी पत्रकारिता, राज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011, पृ. 98*
3. *मोहन, नरेन्द्र, धर्म और साम्प्रदायिकता, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 02*
4. *यादव, आर.एस., साम्प्रदायिकता और भारतीय समाज, पृ. 24*
5. *चन्द्र, विपिन, आधुनिक भारत का इतिहास, ऑरियन्ट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2011, पृ. 119*
6. *सिंह, तारकेश्वर, भारतीय राजनीति दर्शन और सेक्युलरिज्म, पृ. 98*
7. *गुप्ता, मोहनलाल, भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या एवं हिन्दू प्रतिरोध का इतिहास, लिटररी सर्किल, 2018, पृ. 69*
8. *मोहन, नरेन्द्र, धर्म और साम्प्रदायिकता, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 18*
9. *गुप्ता, रमणिका, साम्प्रदायिकता के बदलते चेहरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004*
10. *रणजीत, साम्प्रदायिकता के जहर, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018*